सातवां वेतन आयोग किसके लिए?

वित्तमंत्री ने केन्द्रीय उच्च-अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन बढाने की सिफ़ारिश की है। 2016 के जनवरी माह में सातवें वेतन आयोग की सिफ़ारिशें लागू होनेवाली हैं। उन्होंने शुद्ध वेतन का 15 प्रतिशत वेतन बढाने पर ज़ोर दिया है जिससे न्यूनतम प्रतिमाह वेतन 18,000 रुपये और अधिकतम 2,50,000 रुपये तक हो जायेगा, इससे केन्द्र सरकार की जेब से 1,00,000 करोड़ रुपये निकलेंगे। छठे वेतन आयोग की सिफ़ारिश 2006 में लागू हुई थी।

पिछली कांग्रेस सरकार ने गरीबों का मज़ाक उड़ाते हुए गरीबी रेखा का पैमाना घोषित किया था जिसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में क्रमश: 32 रुपये और 28 रुपये प्रतिदिन कमानेवाले को गरीबी रेखा से ऊपर माना था जिसपर मौजूदा भाजपा सरकार ने कोई बदलाव नहीं किया है। उनका मतलब था कि महीने का वेतन 32 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से 30 दिन का 960 रुपये बैठता है, इतने वेतन में कोई भी व्यक्ति अच्छा खाना, कपड़ा, अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और सर छुपाने के लिये छत भी पा सकता है। बाकि जरूरतों को भी पूरा कर सकता है। क्या वास्तव में ऐसा सम्भव है? कॉलेजों की बढ़ती फ़ीस, ज़मीनों के बढ़ते दाम, आसमान छूती महंगाई और बढ़ती बेरोज़गारी के चलते ऐसा नहीं हो सकता कि अपनी सभी जरूरतों को पूरा किया जा सके। जिन लोग़ों की आमदनी 960 रुपये प्रति माह के आस-पास है, उनको मिलने वाली सभी सरकारी सहायता खत्म की जा रही है जबकि सरकारी अफ़सरों का वेतन बढ़ाया जा रहा है जिनका वेतन पहले ही 960 रुपये प्रतिमाह से कई गुना ज़्यादा है।

बढ़ती महंगाई को देखते हुए छोटे कर्मचारी का वेतन बढ़ाना बेहद जरूरी है, लेकिन वरिष्ठ अधिकारियों के वेतन को क्यों बढ़ाया जा रहा है जबकि उनका वेतन अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिये भरपूर है। बड़े-बड़े अर्थशास्त्री सातवें वेतन आयोग के पक्ष में तर्क दे रहे हैं कि इससे उपभोग बढ़ेगा, बाजार की रफ़्तार में उभार आयेगा। सातवें वेतन आयोग से मुख्य रूप से फ़ायदा उनका होगा जिनके पास पहले ही अतिरिक्त बचत है। वे लोग कार, ज़मीन, फ़्लैट, आदि खरीदने के लिए कम्पनियों के पास जायेंगे और जब कम्पनियां इन्हें अपने माल बेचेंगी, तो वाहन, उपभोक्ता सामान और रियल इस्टेट कम्पनियों को सबसे ज़्यादा फ़ायदा होगा। ऐसा ही छठे वेतन आयोग के बाद भी हुआ था। वर्ष 2008 में मारुति कार की बिक्री वृद्धि दर 4 फ़सदी थी और वर्ष 2011 में 14 फ़ीसदी हो गयी थी। अर्थशास्त्रियों के ऐसे तर्क उच्च वर्ग के पक्ष में किया गया प्रचार हैं। क्या किसानों की फ़सलों का समय से भुगतान करने, बेरोज़गारी से परेशान नौजवानों को रोजगार देने और मज़दूरों की आमदनी बढ़ाने से लेग़ों की क्रयशक्ति नहीं बढ़ेगी? क्या इससे अधिक मांग पैदा नहीं होगी और बाजार का ठहराव नहीं टूटेगा?

सवाल क्रय शक्ति बढ़ाने का है ही नहीं। असली सवाल पक्षधरता का है सरकारी मशीनरी में शामिल उच्च अधिकारी सत्ता के हाथ-पैर हैं। सरकार उन्हें और मजबूती से अपने पक्ष में करने के लिये उनके वेतन में वृद्धि कर रही है। इस तरह जो लोग पहले से चांदी के चम्मच से खा रहे थे, अब सोने और हीरे की प्लेटों में खायेंगे।

सवाल क्रय शक्ति बढ़ाने का है ही नहीं। असली सवाल पक्षधरता का है सरकारी मशीनरी में शामिल उच्च अधिकारी सत्ता के हाथ-पैर हैं। सरकार उन्हें और मजबूती से अपने पक्ष में करने के लिये उनके वेतन में वृद्धि कर रही है। इस तरह जो लोग पहले से चांदी के चम्मच से खा रहे थे, अब सोने और हीरे की प्लेटों में खायेंगे। सरकार सातवें वेतन आयोग के लिये आम सहमति बनाने के उद्देश्य से सरकारी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रही है। लेकिन अधिकारियों की तुलना में यह वृद्धि बहुत मामूली है। इसके अलावा सरकारी परियोजनाओं में ज़्यादातर कर्मचारी ठेके पर रखे जाते हैं। जिनके लिये सातवें वेतन आयोग का कोई मतलब नहीं है। दूसरी तरफ़ ट्रेड यूनियनों ने सातवें वेतन आयोग की रिपोर्ट का विरोध किया है। यूनियनों का कहना है कि प्रस्तावित वेतनवृद्धि पिछले कई दशक में सबसे कम है और यह महंगाई को देखते हुए पर्याप्त नहीं है। मज़दूरों के लिये न्यूनतम वेतन दिया जाता है। मज़दूर अपनी जरूरतों के लिये मांग न कर सकें इसके लिये यूनियन बनाने में बाधा डालने के लिये काले कानूनों को पारित किया जा चुका है। 100 मज़दूरों वाली कोई भी कम्पनी एक साथ बिना किसी नोटिस के सभी को बाहर का रास्ता दिखा सकती है। पहले से ही श्रम सुधारों के जरिये मज़दूरों के अधिकारों में कटौती की जा चुकी है। सातवां वेतन आयोग किन लोग़ों को मजबूत करने के लिये लाया जा रहा है? यह समझना मुश्किल नहीं है।

अगर बड़े-बड़े अधिकारियों के वेतन न बढाकर उनकी जगह कुछ नयी भर्तियां निकाली जाती तो बेरोजगारी का दंश झेल रहे नौजवानों में से कुछ को जीवन चलाने के लिये नौकरी मिल जाती और वे भी आत्मसम्मान की जिन्दगी जी सकते थे। स्कूल और कॉलेज की फ़ीसें कम कर दी जाती तो गरीब छात्र भी शिक्षा ले सकते थे। कुछ सरकारी अस्पतालों को खुलवा दिया जाता तो इलाज करवाने में असमर्थ लोग अपना इलाज करा सकते थे।

-ललित देश-विदेश

खून बेचकर घर चलाने को मजबूर किसान

झांसी से 65 किलोमीटर दूर मऊरानीपुर के ग्राम बड़ागांव में आज गरीबी, भुखमरी और सूखे के चलते किसानों को अपनी जरूरतों के लिये खून बेचकर पैसा जुटाना पड़ रहा है। इसी गांव के एक 70 साल के बुजुर्ग किसान ने बताया कि उनका बच्चा बिमार हो गया था। नज़दीक में कोई सरकारी अस्पताल नहीं होने के चलते उसे निजी अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। लेकिन उनके पास इतना पैसा नहीं था कि वह दवाइयों का और अस्पताल का खर्च उठा सकें। इसलिये उन्हें 1500 रुपये में अपना खून बेचना पड़ा। तब कहीं जाकर अपने बेटे की जान बचा पाये लेकिन डॉक्टरों ने अब दोबारा खून लेने से मना कर दिया है, क्योंकि बूढ़े हो चुके शरीर में अब इतना खून नहीं बचा है। इसी गांव में और भी ऐसे कई किसान हैं जिन्होंने कम से कम पांच बार खून बेचकर अपने परिवार की जरूरतें पूरी की।

सूखे और बाढ़ के अलावा सरकार भी उनकी इस हालत की जिम्मेदार है। परियोजनाओं के नाम पर उनकी ज़मीनें ले ली गयीं और समय से मुआवज़ा नहीं मिला। इलाके की लाखों की ज़मीनें करोड़ों के भाव बिकने लगीं। इतनी महंगाई के बाद जब मुआवज़ा मिला तो उनकी वह आर्थिक हैसियत नहीं रह गयी कि वे दूसरी जगह पर ज़मीन खरीद सकें और न ही वे इतने शिक्षित थे कि कोई व्यापार ही शुरू कर दें। यही स्थिति कमोबेश आज देश-भर के किसानों की है। कहीं किसान फ़सलों के दाम न मिलने से निराश है तो कहीं फ़सल का भाव पिट जाने से। सूखा और बाढ़ के चलते किसानों की जिन्दगी बद से बदतर होती जा रही है। आखिर यह कैसी व्यवस्था है और ये कैसी सरकारें हैं, जिनके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती जबकि अन्नदाता किसान आज आत्महत्या करने और अपने शरीर से खून की एक-एक बूंद बेचने के लिये मजबूर है।

देश-विदेश

रामायण में किसी भी पात्र का कोई उपनाम नहीं, महाभारत में भी किसी भी पात्र का कोई उपनाम नहीं।

जैसे रामचंद्र जी के नाम के साथ न सिंह जुड़ा है, न चौधरी, न कुछ।

दशरथ जी के नाम के साथ न सिंह जुड़ा है, न चौधरी, न लाला, न कोई दूसरा उपनाम ।

यहाँ तक कि रामायण को लिखने वाले वाल्मीकि जी के नाम के साथ भी कोई उपनाम नहीं जुड़ा है।

महाभारत के किसी भी पात्र के नाम के साथ, श्रीकृष्ण जी, युधिष्ठिर, भीम, धृतराष्ट्र, विदुर, द्रोण, संजय, कुंती, गांधारी, भीष्म (देवव्रत) आदि किसी के नाम के आगे कोई उपनाम नहीं है।

इससे यही साबित होता है कि उपनाम सामाजिक विकृति है जो ऊँच-नीच के भेद-भाव के कारण कालांतर में पैदा हुई।

तुर्की-ब-तुर्की / केक की औकात नहीं तो सूखी रोटी से काम चला!

''महंगी फ़ीस नहीं दे सकते तो सरकारी स्कूल में पढाओ।'' (निजी स्कूलों में मनमानी फ़ीस बढोत्तरी के विरोध में पहुंचे अभिभावकों को लोकसभा अध्यक्ष एवं भाजपा सांसद सुमित्रा महाजन से मिला जवाब)

''हमारा कहना है-

▯ वाह ताई! तुने तो सही फ्रांस की रानी को मात दे डाली। 1789 में फ्रांसिसि क्रांति के दौरान फ्रांस की रानी ने रोटी मांगने वालों की भीड़ को केक खाने की सलाह देकर अपनी जान गंवाई थी। तू तो समझदार निकली जैसे-तैसे सरकार के सरकारी स्कूल समझ के स्रोत हैं। लोग ही बावले हैं जो अपने बच्चों को इन सरकारी स्कूलों में भेजने की बजाय प्राइवेट स्कूलों की फ़ीस का रोना रो रहे हैं। प्राइवेट स्कूलों में बच्चों को पढ़ाने की इनकी किस्मत होती तो ईश्वर ने इन्हें भी लूटने खाने का कोई सरकारी या प्राइवेट जुगाड़ न दिया होता।

▯ वैसे लगे हाथों आप उन सरकारी स्कूलों की लिस्ट भी जारी कर दो जिनमें थोड़ी बहुत पढ़ाई भी होती हो तथा गंदगी का साम्राज्य न हो। जहां अध्यापक एक तो पूरी संख्या में हों और दूसरे उनकी पढ़ाने में कोई दिलचस्पी बची हो। ऐसे सरकारी स्कूल कितने बचे होंगे जिनके अध्यापक सारा साल जनगणना, चुनाव स्वास्थ्य अभियान जैसे सरकारी ढकोसलों में न उलझा कर रखे जाते हों। वे कब तो खुद पढें और कब छात्रों को पढायें?

▯ अपने दिल पर हाथ रखकर बताना ताई कि सरकारी स्कूल के अध्यापक तुम जैसे राजनीतिकों के लिये कमाऊ कार्यकर्ताओं वाली भूमिका नहीं निभा रहे? उनके सिर पर तबादले की तलवार हर वक्त लटकी रहती है और वे तुम जैसों की हाजिरी भरते रहते हैं। अब या तो उनसे हाजिरी भरवा लो या स्कूलों में बच्चे पढ़वा लो।

▯ तुमने बात तो अपने मन की ही कही है। तुम जिस सत्ताधारी वर्ग से आती हो उसे कहां मंजूर होगा कि साधारण घरों के बच्चों को भी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो। लगता है इसी लक्ष्य को पाने के लिय अब भी सरकारी स्कूल चलाये जा रहे हैं। शिक्षा का सारा बजट, अध्यापकों की तनख्वाह और मन्त्रियों-अफ़सरों के कमीशन में लग जाता है। ज्यादातर बच्चे जो इन स्कूलों में आते हैं, उनका भी उद्देश्य सरकारी खैरात पाने तक सीमित कर दिया गया है। तुम यही तो चाहती हो कि देश का आम नागरिक खैरातों की इन लाइनों में ही लगा रहे और तुम जैसों की जय-जयकार करता रहे।

▯ फ्रांस की रानी के हश्र को न भूलना सुमित्रा महाजन! गिलोटीन (सिर काटने की मशीन) फ्रांसीसियों ने उस दौर में इजाद की थी। हम भी इसे बनाना सीख सकते हैं।